National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2020 1(28): 192-196
© 2020 NJHSR
www.sanskritarticle.com

सुरेश कुमार शर्मा
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान,
(मानित विश्वविद्यालय जयपुर)

भारतीय ज्योतिष का उद्भव से 1951 तक का इतिहास विभिन्न मतों के अनुसार विवेचन

सुरेश कुमार शर्मा

सारांश

ज्योतिष शास्त्र का विकास मानव जीवन के विकास के साथ ही हुआ। मनुष्य का स्वभाव जिज्ञासाओं से भरा हुआ है वह सृष्टि की प्रत्येक वस्तु के साथ अपने जीवन का तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। वह हमेशा से ही जानना चाहता है कि क्यों, कैसे, क्या हो रहा है? आगे क्या होगा? ये तारे नक्षत्र क्या है? सूर्य प्रतिदिन पूर्व से क्यों निकलता है, ऋतुएँ किस प्रकार बदलती हैं, पुच्छल तारे क्या हैं इत्यादि। इन्हीं सब को जानने के लिए वह निरंतर प्रयासरत रहा। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि मानव की उपर्युक्त जिज्ञासा ने ही उसे ज्योतिष शास्त्र के प्रति गंभीर किया। आदिम मानव ने आकाश की प्रयोगशाला के सामने आने वाले ग्रह, नक्षत्र और तारों का पर्यवेक्षण करना प्रारम्भ किया और अनेक रहस्यों का पता लगाया जिसने हमें ज्योतिष के साथ जीवन का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। वैदिक काल से ही ज्योतिष विद्यमान हैं। जो मानव जीवन के लिए सब प्रकार से कल्याण मार्ग हेतु पथ प्रदर्शक हैं।

कूट शब्द: वेद, ज्योतिष, मानव, जिज्ञासा

1. प्रस्तावना

वैदिक संस्कृत साहित्य के सर्वप्रथम ग्रन्थ वेद माने गए। भारतीय संस्कृति में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। वेद शब्द विद धातु में घञ प्रत्यय जोड़ने से सम्पन्न होता हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ है जानना इसी धातु से विदित जाना हुआ, विद्या -ज्ञान, विद्वान ज्ञानी जैसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार वेद ज्ञान प्राप्ति के वे साधन हैं जिनके मध्यम से समस्त सत्य विधाएं जानी या प्राप्त की जाती हैं। ज्योतिषम् नेत्रमुच्यते " - वेद को समझने के लिए, सृष्टि को समझने के लिए 'ज्योतिष शास्त्र' को जानना आवश्यक है। ज्योतिष शास्त्र का अर्थ होता है- प्रकाशवाले पिण्डों की गतिविधियों को बताने वाला शास्त्र। जैसे सूर्य, ज्योति पिण्ड है, प्रकाश का पिण्ड है। यह प्रकाश फेंकता है। इसी तरह से एक सूर्य, ग्रह और उपग्रह आदि खगोलीय पिण्डों की गतिविधियों को बताने वाला शास्त्र ज्योतिष शास्त्र हैं।

2. शोध उद्देश्य व प्रविधिः

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य भारतीय ज्योतिष के उद्भव व उसके इतिहास को समझने का प्रयास करना है। प्रस्तुत शोध पत्र वेद, शास्त्र, पुराण, प्राचीन विविध ग्रन्थ समीक्षात्मक पुस्तकें, शोध-पत्र एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख व रचनाओं में निहित या समाहित विचारों, दृष्टि तथा सुझावों पर आधारित है। जिसमें समस्त चिंतन एवं निरक्षण के उपरांत ज्योतिष के सतत विकास की दृष्टि से निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं।

Correspondence:
सुरेश कुमार शर्मा
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान,
(मानित विश्वविद्यालय जयपुर)

3. पूर्ववर्ती शोध कार्यों का अध्ययनः

अलबेरुनी फ़ारसी विद्वान लेखक, वैज्ञानिक तथा विचारक के शब्दों 'सिंदहिन्द' नामक ग्रन्थ के अनुसार अरबवासियों ने भारतीयों से ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त किया था ।[1] इसके अतिरिक्त इनके अनुसार जिन-जिन जातियों से उसका संपर्क रहा है, उन उन जातियों के संख्या सूचक अंकों का अध्ययन करने के बाद अलबेरुनी ने अपनी धारणा प्रकट की संसार की कोई भी जाति प्राचीन समय में हजार से अधिक संख्या नहीं जानती थी यहाँ तक अरबवासी भी सहस्त्राधिक संख्या से परिचित नहीं थे। लेकिन हजार से भी कही अधिक क्रम संख्या बताने वाले अंक भारतीय ज्योतिष में ही थे । इस विषय में हिन्दू सब जातियों के अग्रणी थे ।[2] रोम के प्रो. नलिनो के अर्थ के अनुसार 771 में भारत में भारत की एक विद्वान मण्डली बगदाद गयी किसने कि ब्रह्म स्फुट सिद्धांत का परिचय करवाया जिसे कि भारतीय खगोलविद ब्रह्म गुप्त ने 628 ई. में लिखा था ; जिसके आधार पर इब्राहिम इब्न हबीब - अल-फजारी और याकुब इब्न तारिक ने मुसलमानी चन्द्र वर्ष के अनुसार सारणियाँ तैयार की । अतः भारतीय ज्योतिषियों ने ही सर्वप्रथम वैज्ञानिक रीति से अंकों गणित का विकास किया और उसके बाद अरबीय ज्योतिषियों ने उसको अपनाया ।[3] इसके अलावा भारतीय ज्योतिष ग्रह मण्डल सम्बन्धी ज्ञान बहुत ही प्रौढ़ और प्राचीन था । वे स्थिति शास्त्र (Statics) और गति शास्त्र (Dynamics) सम्बन्धी सिद्धांतों से भी परिचित थे । वेदों को सर्वप्रथम पश्चिमी देशों से परिचित कराने वाले जर्मन दार्शनिक प्रो. मैक्समूलर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि 'भारतवासी आकाशमंडल और नक्षत्रमंडल आदि के बारे में अन्य देशों के ऋणी नहीं हैं। इन वस्तुओं के मूल आविष्कर्ता वे ही हैं । डॉक्टर राबर्टसन का कथन है कि "12 राशियों का ज्ञान सबसे पहले भारतवासियों को ही हुआ था। भारत ने प्राचीन काल में ज्योतिर्विद्या में अच्छी उन्नति की थी" ।[6] प्रो. कोलब्रुक और बेवर ने लिखा है कि “भारत को ही सर्वप्रथम चान्द्रनक्षत्रों का ज्ञान था। चीन और अरब के ज्योतिष का विकास भारत से ही हुआ है। उनका क्रान्तिमण्डल हिन्दुओं का ही है। यद्यपि इस पर विद्वानों में कहीं-कहीं मतभेद भी हैं, निस्सन्देह उन्हीं से अरबवालों ने इसे लिया था" ।[7] डी मार्गन ने स्वीकार किया है कि “भारतीयों का गणित और ज्योतिष यूनान के किसी भी गणित या ज्योतिष के सिद्धान्त की अपेक्षा महान् है। इनके तत्व प्राचीन और मौलिक हैं" ।[8] वर्जेस ने सूर्यसिद्धान्त के अंगरेजी अनुवाद के परिशिष्ट में अपना मत उद्धृत करते हुए बताया है कि "भारत का ज्योतिष टालमी के सिद्धान्तों पर आश्रित नहीं है, किन्तु इसने ई० सन् के बहुत पहले ही इस विषय का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था" ।[9]

4. भारतीय ज्योतिष का उद्भव:

भारतीय ज्योतिषशास्त्र की मूल उद्भव वेदों से हुआ है। मुण्डकोपनिषद के अनुसार मनुष्य को जानने योग्य दो विद्याएं हैं- परा और अपरा । उनमें चारों वेदों के शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष- ये सब 'अपरा' विद्या हैं तथा जिससे वह अविनाशी परब्रह्म तत्व से जाना जाता है, वही 'परा' विद्या है ।[10] ज्योतिष को इस प्रकार वेद के छह अंगों में से एक माना गया है | अतः ज्योतिष शास्त्र वेदांग हैं । शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द शास्त्र तथा ज्योतिष ये छह वेदांग हैं ।[11] इनमें व्याकरण वेद का मुख हैं, ज्योतिष नेत्र, निरुक्त कान, कल्प हाथ, शिक्षा नाक तथा छन्द पैर हैं ।[12]

5. भारतीय ज्योतिष का इतिहास:

भारतीय ज्योतिष के विकास की परम्परा को संकलित एवं वर्गीकृत करना सरल नहीं हैं । इसका मुख्य कारण यह है कि एक तो इसके प्रारम्भिक काल अथवा उद्भव का वास्तविक ज्ञान नहीं है । सुविधा के लिए भारतीय ज्योतिष के इतिहास निम्नप्रकार विभाजित किया जा सकता हैं ।

1. पूर्व प्रारम्भिक काल आदि काल से 10000 ई. पू. तक
2. उदय काल - ई. पू. 10000 से ई. पू. 500 तक
3. आदि काल - ई. पू. 500 से ई. 500 तक
4. पूर्व मध्यकाल ई. 501 से ई. 1000 तक
5. उत्तर मध्यकाल ई. 1001 से ई. 1600 तक
6. आधुनिक काल - ई. 1601 से ई. 1950 तक

5.1 पूर्व प्रारम्भिक काल आदि काल से 10000 ई. पू. तक:

आदि मानव की अनंत जिज्ञासाओं में काल, स्थिति और दिशा ज्ञान की थी इन्हीं जिज्ञासाओं के साथ मानव खोज के अवश्य प्रयास किये | इन्हीं जिज्ञासाओं के समाधान के लिए मनुष्य ने एकनिष्ठ होकर प्रत्यन किये तभी से ज्योतिष का प्रारम्भ मानते हैं । इन्हीं मानव जिज्ञासाओं के साथ उत्तरोत्तर ज्योतिष का विकास होता गया । दिन-रात, पक्ष, मास वर्ष, अयन आदि दैनिक जानकारी के विषयों का ज्ञान मनुष्य को आसानी से हो गया ।[13] इस युग में ज्योतिषशास्त्र का स्वरूप स्वतंत्र स्वरुप में न होकर धर्म व दर्शन के साथ मिला हुआ था ।

5.2 उदय काल ई. पू. 10001 से ई. 500 तक:

यद्यपि इस काल के आरम्भ समस्त विषयों का ज्ञान एक रूप में मिला-जुला था । इस कारण से ज्योतिष का भी अलग से साहित्य नहीं मिलता फिर भी ज्योतिष के विषय में जानकारी अवश्य मिल जाती है । ऋग्वेद[14] तथा अथर्ववेद[15] में काल शब्द का प्रयोग हुआ है । शतपथ ब्राह्मण में भी काल शब्द का प्रयोग किया गया है । यहाँ काल का प्रयोग समय के अतिरिक्त भूत एवं भविष्य का स्रोत भी बतलाया गया है । वैदिक साहित्य में ज्योतिष से सम्बन्धित प्रसंग मिलते हैं । वेद, ब्राह्मण-ग्रंथों, आरण्यकों, उपनिषदों में ज्योतिष से सम्बंधित विषय ऋतु, अयन, वर्ष, युग, ग्रह कक्ष, नक्षत्र, ग्रह, राशि, ग्रहण, विषुव, दिन, वृद्धि, आदि ज्योतिषीय विषयों पर चर्चा

विस्तार से की गई हैं। तैतिरीय संहिता में मधु, माधव आदि मासों के नाम तथा इन मासों के आधार पर बसंतादि ऋतुओं के नाम का उल्लेख है।[16] ऐतरेय ब्राहमण में 5 ऋतु का उल्लेख किया गया हैं इसमें हेमंत व शिशिर को एक ही रूप दिया गया है।[17] अयन शब्द शतपथ ब्राहमण तथा तैत्तिरीय संहिता में सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन का द्योतक बताया गया है।[18] इस काल में ज्योतिष के प्रमुख प्रवर्तक सूर्य, पितामह, व्यास, वशिष्ट, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग मरीचि, मनु, अंगिरा, लोमश, पुलिश, च्यवन, यवन, भृगु एवं शौनक 18 आचार्य हुए, जिन्होंने अपने दिव्य ज्ञान से ज्योतिष के सिद्धांतों का निर्माण किया।[19] पराशर संहिता के अनुसार ज्योतिष को शिष्य परम्परा के द्वारा सूर्य ने मय को, ब्रह्मा ने नारद, व्यास से वैश पायन आदि शिष्य, वशिष्ठ से मांडव्य एवं वामदेव पराशर से मैत्रेय और इसी प्रकार पुलस्त्य गर्ग तथा अत्रि आदि ने उनके शिष्यों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया।[20] वैदिक साहित्य के बाद षड- वेदांगों 700-100 ई.पू. में के निर्माण का क्रम आता है जिसमें कि ज्योतिष ने स्वतंत्र स्थान प्राप्त कर लिया था। जिसका Pramanik प्रमाणिक इतिहास 500 ई. पू. के बाद पाते हैं।[21] पाणिनि के अष्टाध्यायी के अनुसार "द्विपदी ज्योतिषि"[22] जिसमें ज्योतिष से सम्बंधित किसी प्राचीन द्विपदी पुस्तिका का आभास मिलता हैं। इसके अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्र से सम्बंधित उत्पात. संवत्सर और मुहूर्त विषय पर लिखे गये प्राचीन ग्रंथों का निर्देश भी गण पाठ में मिलता है।[23] नक्षत्रों का वर्णन पाणिनि ने तीन प्रकरणों में किया हैं।[24] जिससे विश्वास होता है कि पाणिनि के समय तक नक्षत्र सम्बन्धी ज्ञान अपनी पराकाष्ठा पर था।[25]

5.3 आदि काल - ई. पू. 501 से ई. 500 तक:

ज्योतिष वेदांग की रचना को मैक्स मूलर ने 300 ई. पू. वेबर ने 500 ई. पू., व्हिटनी ने 1338 ई. पू. और कोल ब्रुक ने 1410 300 ई. पू. माना है। यद्यपि तत्कालीन नक्षत्र - गणना और सम्पात की गति के अनुसार वेदांग ज्योतिष का निर्माण काल 1408 300 ई. पू. है परन्तु उसका मूर्त रूप लगभग 500 300 ई. पू. के आस-पास ही दृष्टि गोचर होता है।[26] ऋग- यजु-अथर्व इन तीनों संहिताओं से संबद्द ज्योतिष ग्रंथों का विकास हुआ। वेदांग ज्योतिष के साथ -साथ जैन ज्योतिष के ग्रन्थ सूर्य, प्रज्ञप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, और ज्योतिषकरण्डक के स्वतंत्र ग्रन्थ हैं। 'ज्योतिषकरण्डक' की रचना काल 400-300 ई. पू. बताया है जो कि संदिग्ध हैं।[27] तथा इसके अतिरिक्त कल्पसूत्र, निरुक्त, व्याकरण, स्मृतियाँ और महा भारत आदि इसी काल की रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त पितामह सिद्धांत का परिवर्धित एवं परिवर्तित रूप 'लघुवाशिष्ट सिद्धांत' की कृति उपलब्ध हैं। 'रोमक सिद्धांत' के व्याख्याकार आचार्य लाट देव (लगभग 100-200 ई.) हुए। पौलिश सिद्धांत, सूर्य सिद्धांत भी इसी युग की कृतियाँ हैं।[28]

आर्य भट्ट प्रथम (476 ई.[29]) का 'आर्यभट्टीय' और 'तंत्रग्रन्थ', कालकाचार्य (300 ई.) कृत फुटकर रूप में उपलब्ध होने वाले, विलुप्त संहिता - ग्रंथ के ज्योतिष विषयक सिद्धांत, द्वितीय आर्यभट्ट का महाआर्यभट्ट सिद्धांत, लल्ला चार्य (421 ई.) का "धीबृद्धिदतंत्र" नामक ग्रहगणितग्रन्थ और 'रत्नकोश' नामक मुहुर्त ग्रन्थ इस युग की महत्व पूर्ण कृतियां हैं।[30] इस काल में ज्योतिष ने वेदांगों में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया था तथा यह व्यवहारोपयोगी होने के साथ-साथ आत्मकल्याण के लिए भी उपयोग होने लगा। आचार्य गर्ग के अनुसार ज्योतिश्चक्र सम्पूर्ण लोक के शुभाशुभ को व्यक्त करने वाला है जो ज्योतिष का ज्ञाता है वह परम गति को प्राप्त होता है।[32]

5.4 पूर्व मध्यकाल - ई. 501 से ई. 1000 तक:

इस काल में ज्योतिष अपनी उन्नति की चरम सीमा पर था। इस काल में ज्योतिष के सिद्धांत, संहिता और होरा तीन भेद स्पष्ट रूप से अपने महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना कर ज्योतिष के अंग का दर्जा ले लिया था।[33] इस काल में सिद्धांत के रूप में गणित का अधिक वर्चस्व रहा हैं। ब्रह्म गुप्त ने बीज गणित के रूप में "ब्रह्मस्फुट" और "खण्डखाद्यक" की तथा महावीराचार्य ने ज्योतिषपटल और गणितसारसंग्रह नाम के ग्रंथों की रचना की। जिसमें गणित के प्रमुख विषय बीज गणित, रेखा गणित और अंक गणित के रूप ज्योतिष के सिद्धान्तों का तथा फलित ज्योतिष अभूतपूर्व विकास हुआ।[34] इस काल में उल्लेखनीय प्रमुख ज्योतिष ग्रन्थ और ज्योतिर्विद वराहमिहिर - बृहदज्जातक (505 ई.), कल्याण वर्मा - सारावली (577 ई.), ब्रह्मगुप्त- ब्रह्मस्फुट सिद्धांत (598 ई.), मुंजाल - लघुमानस (584 ई.), महावीराचार्य- ज्योतिषपटल और गणितसारसंग्रह (850 ई.), श्रीपति -पाटी गणित, बीज गणित, सिद्धांत - शेखर, रत्नावली (999 ई.) आदि है।[35]

5.5 उत्तर मध्यकाल ई. 1001 से ई. 1600 तक:

इस युग में ज्योतिष शास्त्र का साहित्य के मौलिक और आलोचनात्मक ग्रंथों की रचना का निर्माण होने लगा। उत्तरमध्यकाल के प्रमुख आचार्य भास्कराचार्य ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के सिद्धांतों की आलोचना करते हुए गोल विषय के गणित विषय में समीक्षा करते हुए कहा की "जिस प्रकार तार्किक व्याकरण ज्ञान के बिना पंडितों की सभा में लज्जा और अपमान को प्राप्त होता है, उसी प्रकार गोल विषयक गणित के ज्ञान के अभाव में ज्योतिषी ज्योतिर्विदों की सभा में गोल गणित के प्रश्नों का सम्यक उत्तर न दी सकने के कारण लज्जा और अपमान को प्राप्त करता है।[36] पृथ्वी

स्थिर और सूर्य को गतिशील स्वीकार किया तथा पृथ्वी की आकर्षण शक्ति को भी पहचाना । यंत्रों का निर्माण ग्रह वेध प्रणाली को विकसित किया । फलित ज्योतिष के जातक मुहूर्त, सामुद्रिक, रमल और प्रश्न साहित्य तथा रमल व ताजिक शास्त्र इन दो अंगों का निर्माण भी इसी युग में हुआ । इस काल में उल्लेखनीय प्रमुख ज्योतिष ग्रन्थ और ज्योतिर्विद भास्कराचार्य सिद्धांत शिरोमणि (1114 ई.), बल्लालसेन अद्भुतसागर (1168 ई.), नरचन्द्र उपाध्याय (1324 ई.) -"वेडाजातक - वृत्ति", 'पश्नशतक', 'जन्मसमुद्र' 'लग्नविचार', 'ज्योतिषप्रकाश'; केशव (1456 ई.) 'ग्रह कौतक', 'वर्ष ग्रहसिद्धि', तिथिसिद्धि', 'जातक पद्धति', 'जातकपद्धतिविवृति'; ताजिक पद्धति', 'सिद्धांतवासनापाठ' 'मुहुर्त तत्त्व' गणित दीपिका' आदि ग्रन्थ हैं । गणेश- दैवज्ञ (1517 ई.) - 'ग्रह लाघव', 'लघु तिथि - चिंतामणि', 'सिद्धान्त-शिरोमणि टीका', लीलावती टीका, विवाह वृन्दावन टीका', 'मुहूर्त तत्त्व टीका', 'श्रादादिनिर्णय', कृष्ण जन्माष्टमी - निर्णय', होलिकानिर्णय आदि ग्रंथों की रचना की । दुण्डिराज (1541) 'जातकभरण'; नीलकण्ठ (1556 ई.) - ताजिक नीलकण्ठ; राम दैवज्ञ (1565 ई.) 'मुहुर्त चिंतामणि' आदि ग्रंथों को रचना हुई । अतः स्पष्ट है कि इस युग में ज्योतिष शास्त्र का उत्थान हुआ और इसका विकास अनवरत रूप से चलता रहा ।

5.6 आधुनिक काल ई. 1601 से ई. 1951 तकः

इस युग में पाश्चत्य सभ्यता आ जाने से भारतीय ज्योतिष में नौ प्रणालियां विकसित हुई । भारतीय ज्योतिष और पाश्चत्य ज्योतिष की परस्पर तुलना होने लगी । इस काल में भी कुछ ज्योतिष ग्रंथों की रचनाओं का विवरण मिलता हैं - मुनीश्वर (1568 ई.) - सिद्धांत सार्वभौम, दिवाकर (1606 ई.)- जातक पद्धति, कमलाकर भट्ट (1580 ई.)- सिद्धांत तत्त्व विवेक, नित्यानंद (1639 ई.) - सिद्धांत राज, बापू देव शास्त्री (1821 ई.) - त्रिकोणमिति, बीज गणित, अव्यक्त गणित, नीलाम्बर झा (1923 ई.) 'गोल प्रकाश', सामंत चंद्रशेखर सिद्धांत दर्पण, डाँ. गोरख प्रसाद सौर परिवार, सम्पूर्णानन्द ज्योति विनोद और महावीर प्रसाद श्रीवास्तव - विज्ञान भाष्य आदि ।[37]

अति प्राचीन काल में जब मनुष्य की आँख पृथ्वी पर खुली तब वह सूर्य, चंद्रमा को देख कर आश्चर्यचकित हुआ । उसके मन में सूर्य के विषय में अनेक जिज्ञासायें उत्पन्न हुई, उन्हीं जिज्ञासाओं का समाधान कर्म से विकसित होकर ज्योतिषशाश्त्रीय सिद्धांतों की उद्भावना एवं रचना हुई । ज्योतिषशास्त्र का साक्षात सूर्य की रश्मियों से सम्बन्ध होने के कारण यह अति प्राचीन एवं लोकोपकारक ज्योतिषशास्त्र भारत का अत्यंत प्राचीन एवं लोकोपकारी शास्त्र एवं विज्ञान है। यह शास्त्र मानव जीवन के विविध पक्षों को देखकर सही मार्ग प्रशस्त करता है! इसकी अधिक लोकोपकारीता के कारण वेदांगों में इसे चक्षु की संज्ञा दी गई है ! भारतीय ज्योतिष विश्व का अत्यंत प्राचीन विज्ञान है । मनुष्यों के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक इन तीन प्रकार के दुखों से छुटकारा तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का पथ प्रदर्शक वेद ही है । अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए नेत्र रूपी ज्योतिष की अधिक उपयोगिता है क्योंकि कर्ण नासादि से युक्त होने पर चक्षुहीन व्यक्ति कुछ भी करने लायक नहीं रहता है ।[38] वेदों में अन्य विद्याओं में काल विशेष पर आधारित जो धर्म कर्मादि निर्दिष्ट हैं वे सभी जिस विद्या के प्रभाव से सिद्ध होते हैं वेद के नेत्र स्वरुप उस ज्योतिष शास्त्र के द्वारा ही संभव हो पाता है ।[39] सिद्धांत, संहिता और होरा उसकी विशाल तीन प्रमुख शाखाएँ हैं । इनके निरंतर विकसित होकर स्कंधत्रयात्मक ज्योतिष की छाया में आज का मनोविज्ञान, जीव विज्ञान, चिकित्साशास्त्र, रसायनशास्त्र और पदार्थविज्ञान आदि विषयों के रूप में अपना योगदान देने लगा ।

संदर्भ ग्रन्थः -

1.डब्ल्यू हंटर : इन्डियन गजेटियर (India) इंडिया, पृ. 218

2.अलबेरुनी : इंडिया, जिल्द 1, पृ. 174-177

3.प्रो.सी.ए.नलिनो:एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एंड एथिक्स, अध्याय 12, पृ. 95 भारतीय ज्योतिष का इतिहास, पृ. 256–257 पर उद्धृत - डाँ. गोरख प्रसाद

4.मोनियर विलियम्स : इंडियन विज्डम, पृ185

5.इंडिया, व्हाट केन इट टीच अस! मैक्समूलर

6.भारतीय सभ्यता और उसका विश्व व्यापी प्रभाव पृ. 117

7.Mill's India, Vol. IIp 151

8.Ancient and Mediaeval India, Vol. I p. 374

9.पञ्चसिद्धान्तिका की भूमिका, पृ. LIII-LV

10.'तस्मै स हो वाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्म विद्यौ वदंति परा चैवोपरा च॥
तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽर्थ वेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोज्योतिषमिति। अथ परा यथा तदक्षरमधिगम्यते॥' - मुण्डकोपनिषद 1/1/4

11.छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात्साङ्गमधीत्येव ब्रह्मलोके महीयते ।।
पाणिनीयशिक्षा, अष्टमखण्डः, श्लोक 41-42

12.शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं कल्पः करौ, या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य नासिका पादपद्मद्वयं छन्दं आद्यैर्बुधैः ॥ - भास्कराचार्य सिद्धांत शिरोमणि

13.भारतीय ज्योतिष - श्री नेमिचंद्र शास्त्री
14.कृत यच्छ वघनी विचिनीति काले - ऋग्वेद 10/42/9
15.कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रों अजनत पुरा | कालादृच: सम्भव न्यजुः काला d जायत अथर्ववेद 19/53/1
16.तैतिरीय संहिता 1/4/14 तथा 4/4/11
17.ऐतरेय ब्राहमण 1/1
18.शतपथ ब्राहमण 2/1/3
19.सूर्य पितामहो व्यासो वशिष्ठोऽत्रि पराशरः !
काश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरअंगिराः!!
लोमशः पौलिशाचैव च्यावानो यवनों भृगुः !
शौनकोऽष्टादस्चैवते ज्योतिःशास्त्रप्रवार्त्ताकाः!!
20. गणक तरंगिणी पृ 1-2, वाराणसी 1933
21.संस्कृत साहित्य का इतिहास ; वाचस्पति गैरोला चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी पृ 672
22.अष्टाध्यायी2/4/६०
23.वही 4/3/73
24.वही 4/2/3; 4/3/34-37
25. संस्कृत साहित्य का इतिहास ; वाचस्पति गैरोला चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी पृ 674
26. वही
27.वही; पृ 675
28.वही; पृ 675
29.भारतीय ज्योतिष पृ. 263; भारतीय ज्योतिष का इतिहास, पृ. 263
30.भारतीय ज्योतिष पृ. 313
31.यथा शिखा मयूराणां, नागानां मणयो यथा।
तद् वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ॥
32.ज्योतिष चक्रे तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम् ।
ज्योतिर्ज्ञानं तु यो वेद स याति परमां गतिम् ॥
33.डाँ. सूर्य कान्त संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास
34.भारतीय ज्योतिष - श्री नेमिचंद्र शास्त्री
35.दीक्षित शंकर बाल कृष्ण
36.वादी व्याकरणं विनैव विदुषां धृष्टः प्रविष्टः सभां
जल्पन्नल्पमतिः स्म्यात्पटुवटुभङ्ग्वक्रोक्तिभिः।
ह्रीणः सन्नुपहासमेत गणको गोलानभिग्यस्तथा
ज्योतिर्वित्सदसि प्रगल्भगणकप्रश्नप्रपन्चोक्तिभिः।।
37.भारतीय ज्योतिष - श्री नेमिचंद्र शास्त्री
38.वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं मुख्यता चान्गमध्येऽस्य तेनोच्यते,
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाऽर्गेन हीनो न किंचित करः।
भास्कराचार्य सिद्धांत शिरोमणि
39. वेदेषु विद्यासु च ये प्रदिष्टा । धर्मादयः काल विशेषतोऽर्था: ।
ते सिद्धि मायान्त्यखिलाश्च येन तद वेद नेत्रं जयतीह लोके ।।
- महर्षि आर्ष्टिषेणि, ज्योतिर्निबन्ध